इकाई 16 ईश्वरकृष्ण और सांख्यकारिका

इकाई की रूपरेखा

16.0 उद्देश्य

16.1 प्रस्तावना

16.2 ईश्वरकृष्ण का परिचय

16.3 सांख्यदर्शन का परिचय एवं परम्परा

16.4 सांख्यकारिका की प्रतिपाद्य विषयवस्तु

16.5 सांख्यकारिका की टीकायें

16.6 भारतीयदर्शन परम्परा में ईश्वरकृष्ण एवं उनकी सांख्यकारिका

16.7 सांराश

16.8 शब्दावली

16.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

16.10 अभ्यास प्रश्न

16.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के उपरांत शिक्षार्थी –

- सांख्यकारिका के दर्शन ग्रंथ के रूप महत्व को जानेंगे।
- सांख्यकारिका के रचनाकार एवं तत्संबंधी आचार्य परंपरा से परिचित होंगे।
- सांख्यकारिका की प्रतिपाद्य विषयवस्तु का ज्ञान प्राप्त करेंगे; तथा
- सांख्यकारिका की टीकाओं और भारतीय दर्शन में उसके महत्व को समझने में समर्थ होंगे।

16.1 प्रस्तावना

''आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः'' अर्थात् आत्मा का दर्शन (साक्षात्कार) करना चाहिए। यह श्रुति का निर्देश है। संसार के साथ ही सुख–दुःख उत्पन्न होते हैं। क्योंकि संसार त्रिगुणात्मिका प्रकृति से उत्पन्न होता है और सुख–दुःख मोह ये तीन उन गुणों के धर्म हैं। संसार को प्रत्येक जीव स्वभावतः सुख की प्राप्ति और दुःख से निवृत्ति चाहता है। दुःख की ऐकान्तिक और आत्यन्तिक निवृत्ति आत्मसाक्षात्कार से ही हो सकती है। अतः श्रुति ने उपर्युक्त आदेश दिया है। इस आत्मसाक्षात्कार के लिए ज्ञानी महर्षियों ने जो साधन अपनायें और उनसे जो अनुभव हुआ उसी को उन्होंनें लोकोपकारार्थ अपनी शिष्य परम्परा में फैलाया। जिस ऋषि ने मार्ग दर्शाया उसके नाम से वह दर्शन कहलाया।

भारतीय षड् (6) आस्तिक दर्शनों में सर्वप्रचीन दर्शन – सांख्यदर्शन है। इसके प्रर्वतक महर्षि– कपिल हुए जिन्होंनें 'सांख्यसूत्र' नामक ग्रन्थ की रचना की है। महाभारत में कहा गया है सांख्यदर्शन के समान कोई ज्ञान भी नहीं है और न ही कोई बल है। इस

प्रकार ज्ञान की उत्कृष्टता सिद्ध होने के कारण प्रत्येक दर्शन –जिज्ञासु के लिए सांख्य का ज्ञान अनिवार्य हो जाता है। इसलिए विवेक ज्ञान की पराकाष्ठा को प्राप्त करने के लिए समाज के किसी भी क्षेत्र का व्यक्ति सांख्यज्ञान को प्राप्त कर अपने अभीष्ट (लक्ष्य) को प्राप्त कर लेता है।

इन्हीं विचारधाराओं में अन्यतम समादृत सांख्यदर्शन का ज्ञान विद्याथियों को प्राप्त हो सके तथा सांख्यसिद्धान्तों सही प्रकार से जानकारी मिल सके, इस पर अब चर्चा करेंगे।

सृष्टि का अत्युत्कृष्ट भू–भाग जो भारतवर्ष के नाम से जाना जाता है, ज्ञान–विज्ञान,विद्या, बुद्धि एवम् आध्यात्मिक उपलब्धियों के लिए अनादि काल से सुविख्यात रहा है। वस्तुतः इस पावन धराधाम पर ही आध्यात्म का बीज अंकुरित हुआ, जो विकसित, पल्लवित–पुष्पित होकर ऐसे वटवृक्ष का रुप धारणा किया, जिसकी शाखाओं – प्रशाखाओं ने समस्त विश्व को अपनी शीतल छाया प्रदान की एवं त्रिविधताप दैहिक, दैविक, भौतिक तापों की शान्ति का वरदान दिया।

भारतवर्ष षड्दर्शन की जन्मस्थली है। महात्मा गौतम बुद्ध एवं महावीर तीर्थंकर की जन्मभूमि है। बौद्धधर्म एवं बौद्धदर्शन तथा जैनधर्म एवं जैनदर्शन विश्व के कई देशों में आज भी प्रमुख रुप से विद्यमान है। विश्व में बौद्ध मतावलम्बियों की संख्या सबसे अधिक है। चीन, जापान, मलेशिया, भारत, एशिया महाद्वीप दक्षिण पूर्वी देशों के सर्वाधिक जन बौद्धदर्शन में आस्था रखते है। विश्व के प्राचीनतम नास्तिक दर्शन चार्वाक को तो इस कलिकाल के प्रथम चरण में ही विश्व के अधिकाशं लोग अपने जीवन में व्यावहारिक रुप से अपना चुके है। चार्वाक दर्शन कहता है –

यावत् जीवेत् सुखं जीवेत्, ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः ।।

अर्थात् जब तक जियो सुख से जियो। ऋण लेकर घी पीयो अर्थात् मौज मस्ती से जियो। यह शरीर नश्वर है। पुर्नजन्म के बारे में क्या पता ? परन्तु भारतीय षड्दर्शन–सांख्य–योग, न्याय–वैशेषिक, पूर्वमीमासां और उत्तरमीमांसा या वेदान्त ये सभी आत्मा की सत्ता में विश्वास करते है और मोक्ष प्राप्ति का मार्गदर्शन करते है।

उपर्युक्त षडदर्शन वेदो की प्रमाणिकता और ईश्वर की सत्ता को मानने के कारण आस्तिकदर्शन कहलाते है। इन आस्तिक दर्शनों में परिगणित सांख्यदर्शन विश्व के सभी दर्शनों में अत्यन्त प्राचीन प्रथम दर्शन है। सत्ययुग के प्रारम्भ में ही सांख्यदर्शन का प्रणयन हो चुका था। सांख्यदर्शन के प्रणेता भगवान कपिलमुनि थे, जो सत्ययुग कालीन थे। प्रजापति ब्रह्म ने सृष्टि के मनु एवं प्रथम देवी सतरुपा को उत्पन्न किया। उनकी पुत्री सर्वगुण सम्पन्ना विदुषी देवहूति का विवाह ब्रह्मा के पुत्र कर्दममुनि से हुआ। भगवान विष्णु ने कर्दममुनि को वरदान दिया था, जिसकी पूर्ति के लिए भगवान विष्णु स्वयं देवहूति के गर्भ में अवतीर्ण हुए एवं यथा समय उनका बालक रुप में जन्म हुआ। यही बालक कपिलमुनि के नाम से प्रख्यात हुए।

भगवान कपिल ने माता देवहूति को आत्मज्ञान प्रदान किया, जो सांख्ययोग की संज्ञा से तीनों लोकों में गुंजायमान है। यथा –

कपिलस्तत्त्वसंख्याता भगवानात्ममाया।
जातः स्वयमजः साक्षादात्मप्रज्ञप्तये नृणाम्।।

तत्त्वों की संख्या करने वाले भगवान कपिलमुनि साक्षात् अजन्मा नारायण होकर भी लोगों को आत्मज्ञान का उपदेश देने के लिए अपनी माया से उत्पन्न हुए।

सांख्यदर्शन में सांख्यसूत्रों की रचना महर्षि कपिलमुनि ने की है, और इन सांख्यसूत्रों पर श्रीविज्ञानभिक्षु ने सांख्यप्रवचनभाष्य नामक भाष्यग्रन्थ की रचना की है। सांख्यदर्शन के पच्चीस तत्त्वों का और इसके प्रसिद्ध सिद्धान्तों का बहुत ही सरल, सहज एवं रोचक तरीके से सांख्यकारिका नामक ग्रन्थ में वर्णन किया गया है। इस ग्रन्थ के प्रणेता श्रीईश्वरकृष्ण है।

16.2 ईश्वरकृष्ण का परिचय

सांख्य के इतिहास में आचार्य ईश्वरकृष्ण का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान है। महर्षि कपिलमुनि के द्वारा प्रवर्तित एवं आचार्य आसुरि तथा पच्चशिख द्वारा सवंर्द्धित सांख्यदर्शन की विचारधारा को विछेदरहित रुप से प्रवाहित करने वाले यही श्री ईश्वरकृष्ण है। इनका अनुमोदन वे स्वयं ही अपनी सांख्यकारिका में करते हैं। मानव जीवन के परम–पुरुषार्थ अपवर्ग को सम्पन्न करने के लिए अतिशय अनुग्रह करके अत्यन्त रहस्यमय एवम् दुर्बाध सांख्यज्ञान का उपदेश महर्षि कपिल ने आसुरि को दिया। गुरु गृहीत इस ज्ञान को आसुरि ने पञ्चशिख को प्रदान किया और पञ्चशिख ने इस ज्ञान का पर्याप्त प्रचार व प्रसार किया। परम पवित्र एवं कल्याणकारक यही ज्ञान गुरु शिष्य परम्परा से ईश्वरकृष्ण को प्राप्त हुआ और उन्होनें सम्यक रुप से इस रहस्यात्मक ज्ञान को हृदयंगम करके सत्तर (70) आर्या छन्दों में इसी को सुसम्बद्ध कर दिया। इन कारिकाओं में निरुपित किए गये तत्त्व सांख्यदर्शन के सबसे प्राचीन किन्तु लुप्त ग्रन्थ 'षष्टितन्त्र' द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त ही हैं। सांख्यकारिका में केवल आख्यायिकाओं तथा परमतखण्डन का अभाव है। जैसे –

> 'सप्तभ्यां किल येऽर्थास्तेऽर्थाः कृत्स्नस्य षष्टितन्त्रस्य।
> आख्यायिका विरहिताः परवादविवर्जिताश्चापि'।।

अतः सांख्यकारिकाकार आचार्य ईश्वरकृष्ण मुख्य रुप से कपिल परम्परा का ही अनुगम करते है। अन्य आचार्यों के कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हैं। इस प्रकार वेदों, उपनिषदों, महाभारत इतिहास, पुराण इत्यादि ग्रन्थों में उल्लिखित सांख्य–सिद्धान्त का सार संग्रह करके आचार्य ईश्वरकृष्ण ने जिस सांख्यशास्त्र का प्रतिपादन किया, वह भारत का सर्वाधिक प्राचीन एवम् प्रसिद्ध प्राप्त दर्शन है। इसकी अत्यधिक ख्याति का सबसे बड़ा प्रमाण यही है कि आचार्य शंकर ने अपने शारीरिक भाष्य में सांख्यकारिका के मतों को आधार मानकर उनके उपन्यास एवम् खण्डन पूर्वक स्वसिद्धान्त की स्थापना करते हैं। ईश्वरकृष्ण के सम्बन्ध में अनेक विद्वानों के अनेक विचार है। माठरवृत्ति में तो माठराचार्य ने 'भगवान', 'भगवतोक्तम्' आदि बड़े ही बहुमान के साथ उसका उल्लेख किया है।

आधुनिक विद्वानों ने भी इसके सम्बन्ध में बहुत कुछ विवेचन किया है। जापान के प्रसिद्ध विद्वान् 'ताकाकुसु' ने ईश्वरकृष्ण का समय 450 ईस्वी माना है। डॉ. 'ताकाकुसु' और उनसे प्रभावित हुए लोकमान्य बालगंगाधर तिलक ने अपने गीता रहस्य में 'विश्व की रचना और संहार' प्रकरण की टिप्पणी में ईश्वरकृष्ण और विन्ध्यवासी एक ही व्यक्ति के नाम हैं, लिखा है, वह भी उचित नहीं है, क्योंकि दोनों के मतों में पर्याप्त मतभेद दृष्टिगोचर हो रहा विन्ध्यवास तो सांख्य के अन्तर्गत वार्षगण्य के आवन्तर

सम्प्रदाय का ही एक अनुयायि था। मुख्य (कपिल) सम्प्रदाय में तेरह करण (5 ज्ञानेन्द्रियाँ, 5 कर्मेद्रियाँ, 3 अन्तः करण – बुद्धि, अहंकार, मन) बताये गये हैं। किन्तु वार्षगण्य ने तीन अन्तःकरणों के बजाय एक ही 'बुद्धि' अन्तःकरणों को स्वीकार कर ग्यारह (11 करण माने हैं। उसी का अनुसरण कर विन्ध्यवासी ने भी ग्यारह करण ही स्वीकार किये हैं। युक्तिदीपिकाकार ने सांख्य सप्तति की पच्चम कारिका की अवतरणिका में प्रत्यक्ष प्रमाण के लक्षण का निर्देश करते हुए उनके सम्बन्ध में विभिन्न आचार्यों के अपने अपने विचार प्रस्तुत किये हैं। वार्षगण्य और वृषगण के अनुयायि वार्षगण्य लोगों ने 'श्रोत्रादिवृत्तिः' यह प्रत्यक्ष का लक्षण किया। उसी का उद्योतकर ने न्यायवार्तिका (1/1/4) में खण्डन किया, उसी पर व्याख्या करते हुए वाचस्पति मिश्र के लेख से प्रतीत होता है कि वे उक्त प्रत्यक्ष लक्षण को वार्षगण्य का ही समझते है। इस प्रत्यक्ष लक्षण का उल्लेखपूर्वक खण्डन तत्त्वोप्लव न्यायमञ्जरी तत्त्वार्थलोक प्रमेयकमलमार्तण्ड स्याद्वादरत्नाकर प्रमाणमीमांसा में तत्तद्ग्रन्थाकारों ने किया है। अभयभेदसूरी ने उसी प्रत्यक्षलक्षण को विन्ध्यवासी का बताया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि अपने गुरु वार्षगण्य के प्रत्यक्ष लक्षण को ही विन्ध्यवास ने स्वीकार किया है और ईश्वरकृष्ण का प्रत्यक्ष लक्षण उससे भिन्न है, उसी प्रकार वार्षगण्य के अनुमान लक्षण का खण्डन उद्योतकर ने अपने 'न्यायवार्तिक' में किया है। उसी से मिलते जुलते विन्ध्यवासी के अनुमान लक्षण को शान्तरक्षितकृत तत्त्वसंग्रह की व्याख्या पञ्जिका में बताया गया है।

उसी तरह श्लोकवार्तिककार ने भी बताया है। शब्दपरिर्वतन रहने पर भी अर्थ में कोई अन्तर नहीं है। इससे यह स्पष्ट है कि विन्ध्यवासी ने अपने गुरु वार्षगण्य की परम्परा का पूर्ण रुप से समर्थन किया है। किन्तु ईश्वरकृष्ण का अनुमान लक्षण उनसे सर्वथा भिन्न है। उसी तरह विन्ध्यवासी ने आतिवाहिक शरीर को नहीं माना है। किन्तु ईश्वरकृष्ण ने सूक्ष्मशरीर (आतिवाहिका) को स्वीकार किया है। दोनों के विभिन्न सिद्धान्तों को देखते हुए ईश्वरकृष्ण और विन्ध्यवासी को एक ही कैसे समझा जा सकता है। दोनों पृथक–पृथक व्यक्ति है। इस विचार–विमर्श को दृष्टि में रखते हुए अब निसंकोच यह कहा जा सकता है कि ईश्वरकृष्ण का काल ई. प्रथम–शतक के अनुयोगद्वारसूत्र नामक जैनग्रन्थ में 'कनगसत्तरी' नाम का उल्लेख उपलब्ध होता है। यह नाम ईश्वरकृष्ण की सांख्यसप्तति अथवा सांख्यकारिका का ही है ऐसा सांख्यदर्शन के इतिहाकार विश्वसनीय विद्वान् पं. प्र. उदयवीर शास्त्री एवं म.म.डॉ. गोपीनाथ कविराज जी ने कहा है। प्रमाणों के आधार पर आचार्य ईश्वरकृष्ण का समय प्रथम शताब्दी ई. से पर्याप्त पूर्व सिद्ध होता है। सांख्यकारिका की प्राचीनतम व्याख्या आचार्य माठर द्वारा प्रणित ''माठरवृत्ति'' मानी जाती है और आचार्य माठर का समय सम्राट कनिष्क का शासनकाल (प्रथम शताब्दी ई.) माना जाता है, जिससे सिद्ध होता है कि सांख्यकारिकाकार ईश्वरकृष्ण ईसा की प्रथम शताब्दी से पूर्व हुए है। इसके अतिरिक्त प्रथमशताब्दी ई. की रचना माने जाने वाले ''अनुयोगसूत्र'' नामक जैन ग्रन्थ में ''काविलं'', ''षट्ठितन्त्रम्'', ''माठर'', ''कणगसत्तरी'' (कनकसप्तति) का उल्लेख है। यहां ''काविल'' (कापिल) एवम् ''षट्ठितंत'' (षष्टितन्त्र) के रुप में सांख्यदर्शन के ग्रन्थों का उल्लेख है। अतः स्पष्ट है कि ''कणगसत्तरी'' भी सांख्यग्रन्थ ही है और सांख्यकारिकाकार ने सांख्यकारिका की ''सप्तत्या किल येऽर्थाः के रुप में ''सप्तति'' अर्थात् सत्तर आर्याओं या कारिकाओं का ग्रन्थ कहा है और इसके आधार पर इसका दूसरा नाम ''सांख्यसप्तति'' है, तथा चीन में यह ''सुवर्णसप्तति'' के नाम से प्रसिद्ध है। अतः स्पष्ट होता है कि भारत में भी कम से कम बौद्ध और जैन क्षेत्रों में यह ''कनकसप्तति'' या ''सुवर्णसप्तति'' के नाम से भी प्रसिद्ध रही होगी, जिसके कारण

उक्त जैनग्रन्थ में इसे ''कणगसत्तरी'' (कनकसप्तति) कहा गया है और चीन में इसे ''सुवर्णसप्तति'' कहा गया। इस प्रकार उक्त जैन ग्रन्थ में 'सांख्यकारिका' का उल्लेख होने से सिद्ध होता है कि यह ग्रन्थ प्रथम शताब्दी ई. से पूर्व की रचना है और फलतः इसके रचयिता ईश्वरकृष्ण ईसा की प्रथमशताब्दी से पूर्व हुए हैं

16.3 सांख्यदर्शन का परिचय एवं परम्परा

महामुनि कपिल के द्वारा प्रचारित सांख्यसिद्धान्त सभी दर्शनों में प्राचीनतम है। उपनिषद्ों, रामायण, महाभारत तथा पुराणों में – सर्वत्र यह सिद्धान्त पर्याप्त दिखाई पड़ता है। इसके प्रचार को देखते हुए कहा जा सकता है कि यह दर्शन प्राचीन समय में बहुप्रचारित तथा लोक–प्रिय दर्शन रहा। अन्य दार्शनिकों की ही तरह बौद्धों के ऊपर भी सांख्य का बड़ा प्रभाव पड़ा है। गौतमबुद्ध के मौलिक सिद्धान्त सांख्य से ही लिए गए है। दुःख की सत्ता, वैदिक कर्मकाण्ड की हेयता, ईश्वर की सत्ता परा अनास्था आदि सिद्धान्तों को बुद्ध ने सांख्यदर्शन से ग्रहण किया है।

सांख्यदर्शन को तत्त्वदर्शन भी कहा जाता है। इसमें तत्त्वों की गणना की गई है। तत्त्वों की कल्पना तथा सृष्टि–प्रक्रिया में उनका योग तथा स्थान निर्देश – ये सब कुछ सांख्याचार्यों के अपने पूर्ण मौलिक सिद्धान्त हैं। बाद के सभी दर्शनों ने सांख्य की इस तत्त्व–प्रक्रिया का पूर्ण या अधिकांश उपयोग किया है। तात्त्विक प्रक्रिया के निरुपण के लिए प्रायः सभी दर्शन सांख्यदर्शन के ऋृणि हैं।

'सांख्यदर्शन शब्द की निष्पत्ति

सांख्य शब्द सम् उपसर्गपूर्वक ' चक्षिङ् ख्याञ् (ख्याञ्) धातु से अण् प्रत्यय लगाकर बना है। 'सांख्य का अर्थ होगा 'सम्यक ख्यानम्' अर्थात् सम्यक विचार। इसी को प्रकृति–पुरुष विवेक, विवेक ख्याति, विवेक बुद्धि, 'सत्त्व पुरुषान्यथाख्याति' भी कहते हैं। इसलिए कोषाकारों ने 'पण्डित' शब्द का पर्याय 'संख्यावान्' दिया है। इस प्रकार की विवेक बुद्धि सांख्यशास्त्र प्रतिपादित तत्त्वों के ज्ञान से होती है। कुछ विद्वानों का कथन है कि 'सांख्य' का सम्बन्ध 'संख्या' से है और इस दर्शन का नाम सांख्य इसलिए पड़ा कि इसमें तत्त्वों की संख्या निश्चित की गई है। श्रीमद्भागवद् में इसी को 'तत्त्वसांख्यान' (तत्त्वगणन) कहा गया है। व्याख्याकार श्रीधरस्वामी सांख्य को 'तत्त्वगणक' कहते है। उपयुक्त सम्यक् ज्ञान अर्थ में सांख्य शब्द का प्रयोग श्रीमद्भागवद्गीता में बहुत हुआ है। यह सांख्य शब्द योगरूढ़ है, इसका प्रवृत्तिनिमित्त सांख्यशास्त्र ही है। सांख्य–सिद्धान्त में सृष्टि की उत्पत्ति के साधन के रूप में पच्चीस तत्त्वों की कल्पना की गयी है। इसमें प्रकृति कर्त्री और अचेतन तथा पुरुष तटस्थ एवं चेतन कहा गया है। सत्त्व, रजस् तथा तमस् की साम्यावस्था ही प्रकृति है। प्रकृति से महत् तत्त्व की उत्पत्ति होती है। इसे बुद्धितत्त्व भी कहा गया है। बुद्धितत्त्व से अहंकारतत्त्व तथा अहंकारतत्त्व से पञ्चतन्मात्रएँ और एकादश इन्द्रियाँ प्रादुर्भूत होती हैं। तन्मात्राओं से पञ्चमहाभूत उत्पन्न होते हैं। इसमें पुरुष चेतन है और बाकी सब अचेतन।

इसी तत्त्व गणना के कारण यह दर्शन सांख्य कहा जाता है, संख्यायन्ते – गण्यन्ते तत्त्वानि येन तत् सांख्यम्। तत्त्वों की गणना कर, उनके ठीक–ठीक रुपों को समझाकर प्रकृति एवं पुरुष का पृथक् भाव से ज्ञान कराना ही इस दर्शन का प्रधान ध्येय है। इस कारण से भी इसे सांख्य कहते हैं – 'सांख्यायते प्रकृतिपुरुषान्यताख्यातिरुपोऽवबोधो

सम्यकज्ञायते येन तत् सांख्यम्। सांख्यसार में इसी अन्तिम अर्थ को ही लेकर कहा गया है – 'शुद्धात्मतत्त्वविज्ञानं सांख्यमित्यभिधीयते।' इस तरह देखा गया कि 'सांख्य' शब्द सांख्या तथा ज्ञान दोनों अर्थों को ध्यान में रखकर प्रयुक्त किया गया है। अथवा यह कह सकते है कि प्रचीन काल में यह सांख्या शब्द से गणना एवं ज्ञान – ये दोनों ही अर्थ समझे जाते थे। इसी बात को सूचित करते हुए महाभारत में कहा गया है –

'सांख्यां प्रकुर्वते चैव, प्रकृतिच्च प्रचक्षते।
तत्वानि च चतुर्विंशत्, तेन सांख्यम्प्रकीर्तितम्।।'

सांख्यदर्शन का साहित्य अति विशाल है। सांख्य में इस समय 'तत्त्व समास' तथा 'सांख्यप्रवचन' – ये दो सूत्र ग्रन्थ उपलब्ध हैं। पञ्चशिखाचार्य के द्वारा रचित 'षष्टितन्त्र' नामक विशाल ग्रन्थ भी कभी सांख्यदर्शन की महत्ता का डिण्डिमघोष करता था। किन्तु दुःख है कि आज वह अनुपलब्ध है। सांख्य के प्राप्त मूल ग्रन्थों में ईश्वरकृष्ण के द्वारा रचित 'सांख्यकारिका' अत्यन्त प्रसिद्ध तथा पूर्ण व्यापक ग्रन्थ है। वस्तुतः सम्प्रति उपलब्ध सांख्य साहित्य की सारी आधारशिला सांख्यकारिका ही है। सांख्य के अन्य मौलिक ग्रन्थों की भाँति यदि काल के प्रभाव से सांख्यकारिका भी विलुप्त हो गयी होती तो इतना निश्चित है कि दर्शन जगत् से सांख्य का नाम छिन्न हो गया होता या उद्धरणों में नाम शेष रहा होता। सांख्यदर्शन निःसन्देह भारतीय दर्शन के प्राचीनतम सम्प्रदायों में परिगणित है। सांख्य–योग सिद्धान्तों के संकेत छान्दोग्य, प्रश्नोपनिषद कठोपनिषद्, तथा श्वेताश्वतर उपनिषदों में प्राप्त होते है।

महाभारत और श्रीमद्भगवद्गीता में भी सांख्यसिद्धान्त उपलब्ध है तथा कुछ स्मृतियों और पुराणों में भी सांख्य के सिद्धान्त बहुशः प्राप्त होते हैं।

ब्रह्मसूत्र या वेदान्तसूत्र के रचयिता महर्षि बादरायण और उनके भाष्यकार शंकराचार्य ने तर्कपाद में सांख्य का युक्तियों द्वारा खण्डन करने के अतिरिक्त कई स्थानों पर सांख्य के श्रुतिमूलक होने का भी खण्डन किया है। शंकराचार्य जी ने सांख्य को वेदान्त का 'प्रधान मल्ल' (प्रमुख प्रतिपक्षी) बताया है। उनका कथन है कि यद्यपि सांख्यदर्शन महर्षि कपिल द्वारा उपदिष्ट है तथापि सांख्यदर्शन को, द्वैतवादी होने के कारण श्रुतिमूलक या उपनिषत् सम्मत नहीं माना जा सकता।

श्रुति एवं स्मृति में सांख्य और योग शब्द क्रमशः ज्ञान और कर्म के अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं। बादरायण एवं शंकराचार्य द्वारा सांख्य की श्रुति मूलकता का खण्डन इस ओर संकेत करता है कि सांख्य के प्रारम्भिक आचार्य इसे श्रुतिमूलक मानते होंगे। इसकी अधिक सम्भावना है कि सांख्य अपने प्रारम्भिक रुप में, श्रुतिमूलक एवं ईश्वर वादी रहा होगा तथा कालान्तर में जैन तथा बौद्ध प्रभाव के कारण, अनीश्वरवादी एवं वस्तुवादी बन गया। बादरायण तथा शंकराचार्य ने इसी मध्य–युगीन सांख्य का खण्डन किया है। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि आगे चलकर उत्तर–युगीन सांख्यों ने, जिसमें विज्ञान–भिक्षु (16वीं शती) प्रमुख सांख्य में प्राचीन ईश्वर वाद को पुनः स्थापित किया।

परम्परानुसार महर्षि कपिल सांख्य के प्रतिष्ठापक आचार्य माने जाते हैं। किन्तु 'सांख्यप्रवचनसूत्र' जिसे कपिल मुनि की रचना माना जाता है, निश्चित ही कपिल–प्रणीत नहीं हो सकती। अधिकाशं विद्वान् इसे चौदहवीं सदी की रचना मानते हैं। शंकराचार्य तथा अन्य प्राचीन आचार्यों ने 'सांख्यप्रवचनसूत्र' का न तो उल्लेख किया है और न ही उसे उद्धृत किया है। इसके स्थान पर ईश्वरकृष्ण (तीसरी से पाँचवीं सदी) की सांख्यकारिका से ही उद्धरण दिये गये हैं। वाचस्पति मिश्र ने भी

सांख्यकारिका पर अपनी प्रसिद्ध 'सांख्यतत्त्वकौमुदी' नामक टीका लिखी है। स्वयं ईश्वरकृष्ण ने कपिल, आसुरि तथा पञ्चशिख का प्राचीन सांख्याचार्यों के रुप में उल्लेख किया है। कपिलमुनि बुद्ध से पूर्व हुए हैं। उन्होंने अवश्य 'सांख्य–सूत्र' की रचना की होगी, किन्तु वह दुर्भाग्यवश बहुत पहले ही विलुप्त हो गया होगा। ईश्वरकृष्ण की सांख्यकारिका सांख्य का प्राचीनतम उपलब्ध ग्रन्थ है और सर्वाधिक प्रचलित भी।

विशेष–'सांख्य' शब्द 'संख्या' शब्द से व्युत्पन्न है; संख्या का अर्थ है– सम्यक् ख्यान अर्थात् सम्यक् ज्ञान या विवेक ज्ञान। सांख्या का अर्थ सांख्या की गणना का भी है। सांख्य शब्द में दोनों अर्थ समाविष्ट हैं। सांख्य सम्यक् ज्ञान का दर्शन है, प्रकृति और पुरुष के विवेक ज्ञान का दर्शन है, प्रकृति और पुरुष के विवेक ज्ञान का दर्शन है; तथा सांख्यदर्शन तत्त्वों की संख्या पच्चीस स्वीकार करता है, यह पच्चीस संख्या वाले तत्त्वों का दर्शन है। सांख्य–योग मिलकर एक पूर्ण दर्शन बनाते है; सांख्य दर्शन बौद्धिक तत्त्वचिन्तन है और योग उसे प्राप्त करने की क्रिया या साधन है। सांख्य और योग ने प्रायः सभी भारतीय दर्शनों को किसी न किसी रुप में प्रभावित किया है।

ईश्वरकृष्ण का समय तीसरी सदी से पाँचवी सदी माना जाता है। उनकी सांख्यकारिका उपलब्ध ग्रन्थों में प्राचीन तो है ही शास्त्रीय सांख्य की सर्वाधिक उत्कृष्ट प्रतिनिधि रचना है तथा सर्वाधिक लोकप्रिय भी है।

शास्त्रीय सांख्य–प्रकृति और पुरुष के द्वैतवाद को पुरुषबहुत्व तथा अनीश्वरवादी वस्तुवाद को मानता है तथा यह मौन अस्वीकृति का ही लक्षण माना जाता है।

16.4 सांख्यकारिका की प्रतिपाद्य – विषय–वस्तु

सर्वप्रथम ग्रन्थकार ईश्वरकृष्ण ने मंगल के साथ–साथ शास्त्रारम्भ के प्रयोजन की सूचना दी है कि आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक इन तीनों दुःखों का एकान्त परिहार प्राणिमात्र को इष्ट है। दुःखों का यह परिहार दृष्ट (लौकिक) एवं आनुश्रविक (वैदिक) उपायों से सम्भव नहीं है, कारण कि दृष्ट कारणों से सर्वथा कार्य होते नहीं तथा आनुश्रविक (वैदिक यज्ञादि) उपायों से होने योग्य दुःख निवृत्ति एकान्त हो ही नहीं सकती। दुःख की एकान्त निवृत्ति तो केवल 'व्यक्ताव्यक्तज्ञ विज्ञान' से हो सकती है, वही इस शास्त्र में प्रतिपादित है।

व्यक्त, अव्यक्त और ज्ञ– ये तीनों शब्द इस शास्त्र में विशेष महत्वशाली हैं। इनके महत्व को जानने के लिए इस शास्त्र के मेरुदण्ड सत्कार्यवाद को समझना परमावश्यक है।

उपादान–कारण में पहले से ही कार्य अव्यक्त अवस्था में विद्यमान रहता है जो निमित्त–कारणादि के व्यापार से अभिव्यक्त मात्र होता है। तन्तुओं में पट पहले से ही अनभिव्यक्त अवस्था में रहता है, तुरी–वेमा (करवा) को जब तन्तुकार चलाता है तो तब वह पट उस उपयुक्त व्यापार से 'अभिव्यक्त' होता है।

सांख्यदर्शन का 'सत्कार्यवाद' उसका अत्यन्त प्रसिद्ध तथा अन्य दर्शन से पूर्ण विलक्षण सिद्धान्त है। सत्कार्यवाद के अनुसार कार्य उत्पन्न होने के पूर्व, अर्थात् कारण व्यपार होने से पूर्व, अव्यक्त रुप से अपने कारण में वर्तमान रहता है। जैसे कि तेल रुप कार्य उत्पन्न होने के पूर्व अर्थात् कारण व्यापार होने के पूर्व अव्यक्त रुप से अपने कारण

रुप तिल में अवश्य वर्तमान रहता है। यदि ऐसा न हो तो बालु से भी, मशीन में पेरने पर, तेल निकालने की सम्भावना होने लगेगी। अतः कहना पड़ेगा कि कार्य स्थूल रुप धारण करने के पूर्व कारण में अत्यन्त सूक्ष्मरुप से वर्तमान रहता है। वस्तुतः सांख्य के अनुसार कारण और कार्य में भेद ही नहीं है। एक ही वस्तु जब की वह अव्यक्त – अत्यन्त सूक्ष्म या पिडिण्त रुप में रहती है, कारण कही जाती है और जब वह व्यक्त – स्थूल रुप को धारण करती है, तब कार्य कही जाती है। इसके लिए सुवर्ण और कटक, कुण्डल अथवा मिट्टी और घट तथा दीपक और कसोरा आदि का उदाहरण दिया जाता है। मूल सिद्धान्त है कि यदि तिल में तेल वर्तमान न हो तो चाहे कितना ही प्रयास किया जाए वह उससे उत्पन्न नहीं हो सकता। इस सत्कार्यवाद सिद्धान्त को सांख्यदर्शन ने सफलतापूर्वक अनेक तर्कों और युक्तियों से सिद्ध करने का प्रयास किया है। सांख्यदर्शन के जिन पच्चीस तत्त्वों का वर्णन किया है वे इस प्रकार हैं –

प्रकृतेर्महाँस्ततोऽहङ्कारस्तस्माद्गणश्च षोडशकः।
तस्मादपि षोडशकात्पच्चभ्यः पच्च भूतानि।।

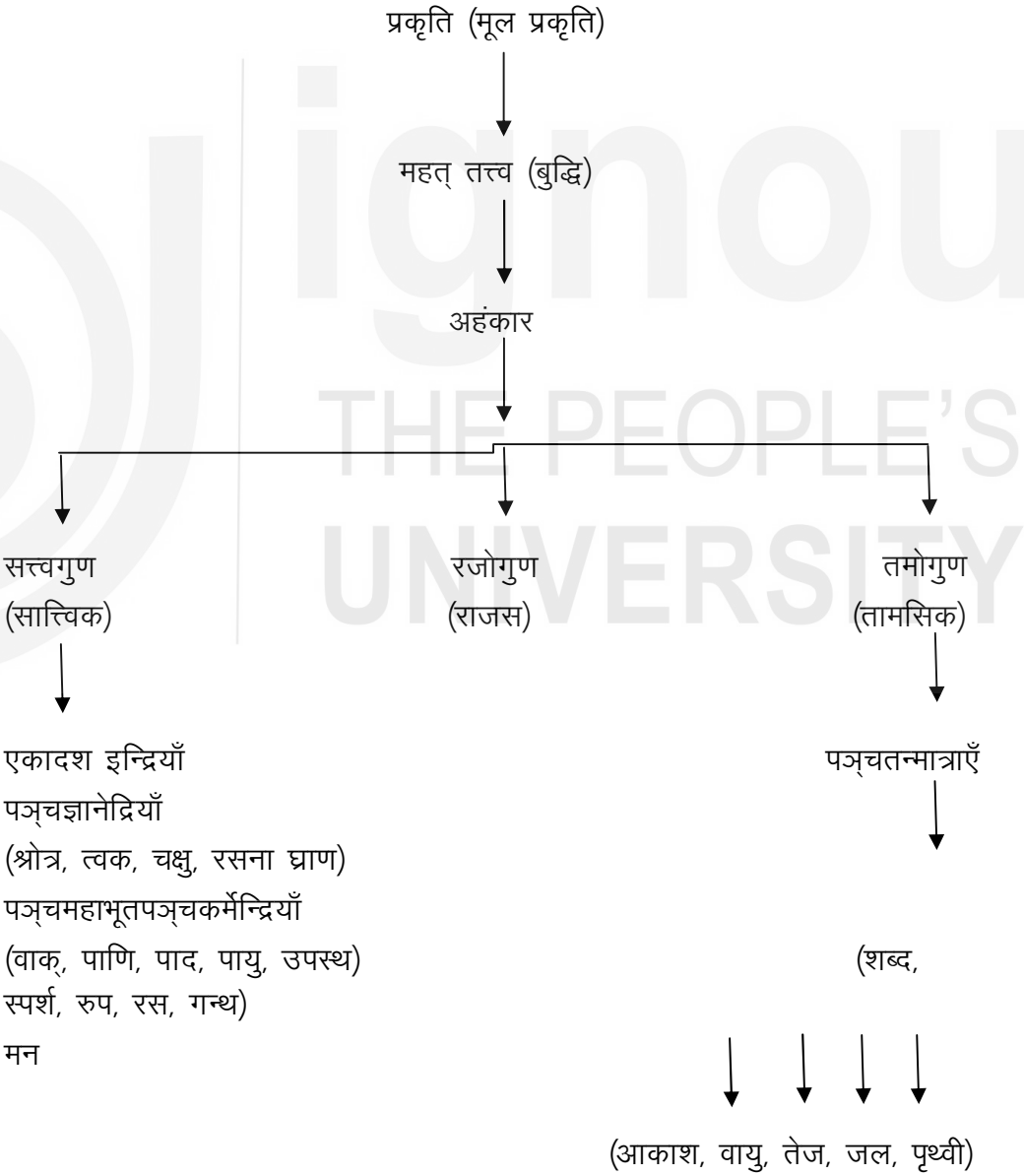

इस 25 तत्त्वों का क्रमशः विवरण इस प्रकार है :

प्रकृति –सत्त्व, रज, और तमो गुण की साम्यावस्था ही प्रकृति है। इन गुणों में चेतन के संयोग से वैषम्य होने लगता है तब सृष्टि के पूर्व यह सारा कार्य जगत् इसी में अव्यक्त रुप से रहता है, इसलिए इसे अव्यक्त कहते है। इसी से सर्ग का प्रारम्भ होता है अतः इसे मूलप्रकृति या प्रधान कहते हैं। यद्यपि यह जड़ है तथापि पुरुष के भोग – अपवर्ग के लिए यह बिना किसी स्वार्थ के लिए प्रवृत्त होती है।

पुरुष –जैसे बिछी हुई शैय्या जड़ है। स्वयं अपने लिए उसका कोई उपयोग नहीं होता। उसे देखकर अनुमान होता है कि कोई (इस शय्या से भिन्न) व्यक्ति है जो इसका उपयोग करेगा। इसी प्रकार प्रकृति भी जड़ है, उसका स्वयं अपने लिए कोई उपयोग नहीं। अतः इस जड़ प्रकृति गुणसमूल का उपयोग करने के लिए किसी चेतन पुरुष की कल्पना आवश्यक है। यह चेतन पुरुष, दृष्टा (साक्षी मात्र), भोक्ता, एकरस अर्थात अपरिणामि और असंहत है, जबकि गुण अचेतन, दृश्य, भोग्य, परिणामी और संहत है। ये पुरुष बहुत हैं

महत् – प्रकृति सर्वप्रथम अपने सात्त्विक अंश से जिस तत्त्व को उत्पन्न करती है वह महत् तथा बुद्धितत्त्व कहलाता है। सत्त्व प्रधान होने से इसमें लघुत्व एवं प्रकाश रहते हैं। यह अध्यवसायात्मक हैं। अर्थात निष्चय करना इसका स्वरुप है। पुरुष के भोग और अपवर्ग का मुख्य साधन यह बुद्धि ही है। प्रकृति और पुरुष के सूक्ष्म भेद की अभिव्यक्ति इसी से होती है। इसके दो प्रकार के धर्म हैं– सात्त्विक और तामस। सात्त्विक–धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य। तामस–अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य और अनैश्वर्य। ये आठ धर्म ही भाव कहलाते हैं। जिनमें 7 से तो पुरुष का बन्ध होता है और 1 ज्ञान से मोक्ष होता है।

अहंकार –प्रतिक्षण परिणाम होने के कारण महत् में स्थित रजोगुण से अहंकार होता है। 'मैं और मेरा यह अभिमान ही अहंकार हैं। इसके तीन रुप होते हैं। 1. वैकृत – जिसमें सात्त्विक अशं अधिक होता है, इसमें ग्यारह इन्द्रियों की उत्पत्ति होती है। 2. भूतादि– इसमें तमोगुण का प्राधान्य होता है और इससे पञ्चतन्मात्रा उत्पन्न होती हैं। 3. तैजस– इसमें रजोगुण का प्राबल्य होता है यह वैकृत तथा भूतादि के कार्यों में सहायक होता है।

तन्मात्रा और इन्द्रिया –अहंकार में परिणाम होकर उसके तामस अंश से जो तत्त्व उत्पन्न होते हैं वे पञ्चतन्मात्राएँ हैं– शब्द, स्पर्श, रुप, रस, और गन्ध। सात्त्विक अंश से जो तत्त्व उत्पन्न होते हैं वे ग्यारह इन्द्रियाँ हैं। इनमें श्रोत्र, त्वक, चक्षु, जिह्वा और घ्राण ये 4 ज्ञानेन्द्रियाँ। वाक्, पाणि, पाद, पायु, और उपस्थ ये पञ्च कर्मेन्द्रियाँ तथा मन उभयेन्द्रियाँ (ज्ञान–कर्म रुप) कहलाता है।

पञ्चमहाभूत –पञ्चतन्मात्राओं में परिणाम होने से पञ्चमहाभूतों की उत्पत्ति होती है। शब्द, स्पर्श, रुप, रस, और गन्थ इन तन्मात्राओं से क्रमशः आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी नामक पञ्चमहाभूत उत्पन्न होते हैं। यद्यपि प्रत्येक महाभूत में पाँचों तन्मात्राओं के अंश विद्यमान रहते हैं किन्तु अधिक अंश जिसका रहता है उससे उसकी उत्पत्ति मानी जाती हैं।

करण –करणं त्रयोदश विधम्। करण तेरह प्रकार के होते हैं। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ (श्रोत्र, त्वक, चक्षु, जिह्वा, घ्राण) तथा पच्च कर्मेन्द्रियाँ (वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ) और मन, बुद्धि, अहंकार। इसमें भी मन, बुद्धि और अहंकार ये तीन अन्तःकरण हैं जो गौण या अप्रधान (द्वारा) मानें जाते हैं। अन्तःकरणों में भी बुद्धि प्रधान मानी जाती है क्योंकि

बाह्ययकरण विषयों का आलोकन करके मन को सौंपते है, मन संकल्प के साथ उन्हें अहंकार को सौंपता हैं, अहंकार बुद्धि को सौंप देता है और बुद्धि ही उनका निश्चय करके पुरुष के समक्ष उपस्थित करती है। बुद्धि ही प्रकृति–पुरुष की पृथकता का विवेक कराती है और वही पुरुष के भोग और अपवर्ग का साक्षात् साधन हैं।

सूक्ष्मशरीर –तीन अन्तःकरण (मन, बुद्धि, अहंकार) दस बाह्ययकरण (5 ज्ञानेन्द्रियाँ और 5 कर्मेन्द्रियाँ तथा 5 तन्मात्रा (शब्द, स्पर्श, रुप, रस, और गन्थ) इन 18 का समुदाय सूक्ष्म या लिंग शरीर कहलाता है। सांख्य का सिद्धान्त है कि सृष्टि के आदि के प्रत्येक पुरुष के लिए एक–एक सूक्ष्मशरीर होता है। यह पाञ्चभौतिक स्थूल शरीर के आश्रित रहता है किन्तु स्थूल शरीर का नाश नहीं होता दूसरे स्थूल शरीर को प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार यह प्रलयपर्यन्त स्थायी रहता है। प्रलयकाल में प्रकृति में लीन होकर पुनः नवीन सृष्टि में नये रुप से उत्पन्न होता है।

प्रकृति पुरुष– संयोग से सृष्टि

किसी बगीचे में एक लूला और एक अन्धा अलग–अलग पड़े रहें तो दोनों बेकार हैं। लूला फलों को देखता है पर ऊँचाई से तोड़ नहीं सकता, अन्धे को सूझता ही नहीं। किन्तु अन्धा पर चढ़ा लें और उसके बताए मार्ग से पेड़ के पास ले चले तो वे दोनों फल खा सकते हैं। ठीक यही स्थिति प्रकृति और पुरुष की हैं। प्रकृति में क्रियाशक्ति तो है पर चेतना नहीं, अतः वह अन्धे के समान हैं जो चल तो सकता हैं पर देखता नहीं। पुरुष चेतन तो है पर उसमें क्रियाशक्ति नहीं, अतः वह लूले जैसे है जो देखता तो है चल नहीं सकता। परन्तु दोनों का संयोग यदि हो जाता है तो कार्य सिद्ध हो जाता है। इसे संक्षेप में यों कह सकते हैं कि पुरुष की चैतन्य शक्ति तथा प्रकृति की क्रियाशक्ति, ये दोनों एक दूसरे की अपेक्षा रखती है इसी से प्रकृति पुरुष का संयोग होता हैं और उससे सर्ग का निमार्ण।

सर्ग (सृष्टि) के दो प्रकार हैं : धर्म–अधर्म आदि (भाव) पहले कहे जा चुके हैं, जो बुद्धि के परिणाम हैं और विपर्यय, अशक्ति, तुष्टि तथा सिद्धि रुप में परिणत होते हैं। यही भावसर्ग, प्रत्ययसर्ग या बौद्धिक सृष्टि कही जाती है। इन धर्मा–धर्मादि भावों की स्थिति या भावसर्ग की स्थिति सूक्ष्म और स्थूल शरीरों से ही साध्य है, अतः दूसरा लिंग (सूक्ष्म) और स्थूल देहमय लिंग सर्ग कहलाता है जिसे सूक्ष्म सर्ग या तन्मात्र सर्ग भी कहते हैं जो चौदह भुवनों में प्याप्त है और भौतिक सर्ग कहलाता है।

प्रत्ययसर्ग –प्रत्ययसर्ग – विपर्यय, अशक्ति, तुष्टि और सिद्धि रुप बुद्धि के परिणामों से हुए, इस (प्रत्ययसर्ग) के 50 प्रकार हैं। 5 विपर्यय + 28 अशक्तियाँ + 9 तुष्टि + 8 सिद्धि = 50 प्रकार हुए।

भौतिकसर्ग (लिंग)– इस ब्रह्माण्ड के मध्य में भूलोक है। भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः और सत्य ये 6 लोक इस भूलोक से ऊपर हैं तथा अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल और पाताल ये सात लोक इस भूलोक से नीचे हैं। भूलोक और स्वर्गलोक के मध्य का अंतरिक्ष ही भूवर्लोक है। इसी को नक्षत्रलोक भी कहते हैं। सूर्य–चन्द्र आदि जितने भी नक्षत्र दिखाई देते है वे सभी इसी लोक में रहते हैं। आज जिस विज्ञान को उन्नति के शिखर पर पहुँचा हुआ है ऐसा कहा जाता है कि उसकी पहुँच इसी भूवर्लोक में पृथ्वी के निकटतम ग्रहों पर करने के लिए एड़ी चोटी का पसीना एक किया जा रहा है, जबकि प्राचीन भारत में भुवर्लोक से ऊपर स्वर्गलोक तक तो आसानी सें आवागमन होता था। कितने ही राजा स्वर्ग में इन्द्र की सहायता

के लिए जाते थे। योगी लोग तो अपने योग–बल से सत्यलोक तक पहुँचते थे। 53 वीं कारिका में जो आठ प्रकार की देवयोनियाँ कहीं जाती है वे इन्हीं लोको में रहती हैं। योगसूत्र के व्यास भाष्य में इसका वर्णन इस प्रकार है–

''बाह्मस्त्रिभूमिको लोकः प्राजापत्यस्ततो महान्।
माहेन्द्रश्च स्वरित्युक्तो दिवी तारा भुवि प्रजा।।

अर्थात् सत्यलोक, तपोलोक और जनलोक ये तीन ब्रह्मलोक कहे जाते हैं। इनमें ब्रह्मयोनि के लोग वास करते हैं। उनके विभाग इस प्रकार हैं – सत्यलोक में चार देवयोनियाँ रहती हैं – अच्युत, शुद्ध–निवास, सत्याभ और संज्ञासंज्ञि। तपोलोक में तीन देव योनियाँ हैं– अभास्वर, महाभास्वर और सत्यमहाभास्वर।

यद्यपि देवयोनियों के कई भेद हो सकते हैं किन्तु प्रधानरुप से 8 विभागों में सबका अन्तर्भाव हो जाता है अतः ''अष्टविकल्पो दैवः'' कहा गया है। इसी प्रकार की तिर्थक् योनि मानी जाती है। पशु खुरवाले प्राणी, जैसे – गाय, भैंस, हरिण, वराह आदि। मृग– बिना खुर वाले प्राणी – जैसे – वानर, भालु, चीता, खरगोश आदि। पक्षी– पंखों वाले। सरीसृत– सरकने वाले सर्प आदि। स्थावर–वृक्ष, लता आदि। घट–पटादि भी इसी स्थावर के अन्तर्गत आते हैं।

विवेकख्याति

सांख्यदर्शनानुसार बुद्धि जड़ है और पुरुष चेतन। किन्तु जब वह अपने को बुद्धि से पृथक् नहीं समझता और बुद्धि के शान्त, घोर या मूढ़ समझता है, यही पुरुष का अविवेक है यही चिदचिद् ग्रन्थि कहलाती है जो पुरुष के दुःख या संसार का हेतु है। बुद्धि से अपने को पृथक समझना ही पुरुष का विवेक है जो इस दुःख या संसार से मुक्त होने का उपाय है। बुद्धि से अपने को पृथक समझ लेने पर बुद्धि में उसकी आत्मा–भावना नहीं रह जाती है और वह बुद्धिगत सन्तापों से सन्तप्त नहीं होता, इसी को विवेक या सदसद्ख्याति कहते हैं। तत्त्वसाक्षात्कार अथवा विवेकख्याति होने पर पुरुष त्रिगुणात्मिका प्रकृति के बन्धन से मुक्त हो जाता है और प्रकृति को केवल नाट्यमच्च पर बैठे दर्शक की तरह देखता है।

मोक्ष –सांख्यदर्शनानुसार मुक्ति दो प्रकार की है – जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्ति। क्लेश कर्म और विपाकाशादि रुप से अवयिक्त ही बुद्धि–रुपी भूमि में कर्मरुपी बीज अंकुर पैदा करता है। तत्त्वज्ञान रुप गीष्म से सुखा दी गई अथवा जलाकर ऊषर बना दी गई बुद्धिरुपी भूमि में कर्मरुपी बीज की उत्पत्ति कैसे सम्भव है? अर्थात् कथमपि ये सम्भव नहीं। इस तरह तत्त्वज्ञान से क्रियमाण कर्म के निर्वाय हो जाने पर, सच्चित् के भस्म हो जाने से प्रारब्ध कर्म की परिसमाप्ति तक जीवन्मुक्ति की अवस्था रहती है, और उसके बाद शरीर के विनष्ट हो जाने पर विदेहमुक्ति होती है। सांख्य की दृष्टि से यही यथार्थ मुक्ति है। विवेकज्ञान का सुमधुर फल है।

तत्त्व–साक्षात्कार अथवा विवेकख्याति होने पर पुरुष त्रिगुणात्मिका प्रकृति को केवल नाट्यमच्च पर बैठे दर्शक की तरह देखता है। प्रकृति भी उस मुक्त पुरुष के लिए अपना कार्य बन्द कर देती है। यद्यपि मुक्ति होने पर भी प्रकृति से उसका संयोग होता है किन्तु उस संयोग से सर्गोत्पत्ति रुप परिणाम नहीं होता क्योंकि पुरुष दर्शक की भाँति ''मैं इसे देख चुका'' यह सोचकर उसकी अपेक्षा कर देता है और प्रकृति भी ''मुझे इसने देख लिया'' यह सोचकर जैसे उसके समक्ष नहीं जाती। इसलिए सर्ग का कोई प्रयोजन नहीं रहता।

16.5. सांख्यकारिका की टीकायें

सांख्यकारिका को 'सांख्यसप्तति,' कनक–सप्तति या हिरण्यसप्तति भी कहा गया है। ईश्वरकृष्ण ने जिन कारिकाओं को लिखा उन्हीं के ये पूर्वोक्त नाम हैं। सम्भवतः अत्यन्त सारभूत होने के कारण ये कनकसप्तति– आदि नाम पड़े हों। अनुयोगद्वारसूत्र में ''कणग सत्तरी'' पद इसके लिए प्रयुक्त हुआ है। छठी शताब्दी के प्रसिद्ध विद्वान् परमार्थ ने वृत्तिसहित इस हिरण्यसप्तति का चीनी भाषा में अनुवाद किया था, जिसका पुनः चीनी भाषा से संस्कृत में अनुवाद श्री अय्यास्वामी शास्त्री ने किया है।

इस ग्रन्थ पर छः (6) प्राचीन व्याख्याएँ (टीकाएँ) उपलब्ध हैं –

1. **माठर–वृत्ति** : यह सम्भवतः इस ग्रन्थ पर उपलब्ध वर्तमान टीकाओं में सबसे प्राचीन है। अनुयोगद्वार सूत्र में कापिलं षष्टितन्त्रं के साथ 'माठर' पद आता है उससे भी इसकी प्राचीनता सिद्ध है। छठी शताब्दी में जिस वृत्ति के साथ सुवर्णसप्तति का चीनी भाषा में अनुवाद हुआ सम्भवतः वह यही वृत्ति थी। इसका असन्दिग्ध स्वरुप उपलब्ध नहीं हैं। चौखम्भा संस्कृत सीरीज से जो माठर–वृत्ति प्रकाशित हुयी है वह या तो गौडपाद भाष्य का विराद रुप है या फिर गौडपाद भाष्य उसका संक्षिप्त रुप।

2. **युक्तिदीपिका** : यह सांख्यसप्तति की सबसे अच्छी एवं उपयुक्त टीका है इसके कर्ता का नाम ज्ञात नहीं है। इसे कोई वाचस्पति मिश्र तथा कोई किसी राजा की कृति मानते है। इसके रचनाकार का निर्णय न होने पर भी यह तो कहना पड़ता है कि यह विक्रम संवत चतुर्थ शती से अर्वाचीन नहीं है। श्री उदयवीर शास्त्री का कथन है कि वाचस्पति मिश्र ने जिस राज वार्तिक के श्लोकों के उद्धरण तत्त्वकौमुदी में दिये है वह सही है।

3. **जयमंगला** : कामन्द नीतिसार, वात्स्यायन कामसूत्र तथा भट्टिकाव्य पर भी इस नाम कर टीकायें हैं परन्तु इन सबका कर्ता एक ही व्यक्ति है यह नहीं कहा जा सकता। प्रस्तुत टीका का कर्ता शंकर प्रतीत होता है और इसका रचना काल विक्रम सं. का सप्तम शतक के लगभग हो सकता है क्योंकि नवम शती में वाचस्पति समान पूर्वक इसके उद्धरण देते है। युक्ति दीपिका से यह टीका बाद की प्रतीत होती है।

4. **तत्त्वकौमुदी** : यह प्रसिद्ध दार्शनिक श्रीवाचस्पति की कृति है, जिनका काल प्रायः विक्रम की नवीं शती का पूर्वार्ध निश्चित है। तत्त्वकौमुदी अन्य सभी टीकाओं की अपेक्षा अधिक प्रचलित रही है क्योंकि पाश्चाद्वर्ती होने से सभी के सिद्धान्तों का पर्यालोचन इसमें हुआ है और प्रौढ़ रचना है ही।

5. **चन्द्रिका** : इस टीका के रचयिता श्री नारायणतीर्थ है जिसका काल 17 वीं शतीं है।

6. **गौडपाद भाष्य** : यह युक्तिदीपिका से, पाश्चात् तथा जयमंगला से पूर्व की रचना प्रतीत होती है। हम पूर्व में कह चुके है कि वर्तमान उपलब्ध माठर–वृत्ति से इसका अत्यन्त साम्य है। माडूक्यकारिका के रचयिता गौडपाद से यह अभिन्न है या नहीं, यह अभी तक विवादास्पद ही है।

16.6 भारतीय दर्शन परम्परा में ईश्वरकृष्ण एवं उनकी सांख्यकारिका

विचारशील विद्वानों का कहना है कि सांख्य शब्द का सर्वप्रथम उल्लेख श्वेताश्वतर उपनिषद् में पाया जाता है। सांख्य–प्रतिपादित विचारों का उल्लेख ऋग्वेद में उपलब्ध होने से उसकी अति प्राचीनता में किसी प्रकार भी संदेह नहीं किया जा सकता। ऋग्वेद की ऋचा इस प्रकार हैं –

''दक्षस्य वादिते जन्मनि व्रते राजाना मित्रावरुणा विवाससि।
अतुर्तपन्था पुरुरथो अर्यमा सप्त होता विषुरुपेषु जन्मसु।।

सांख्यदर्शन के कुल कितने आचार्य हैं इस विषय में कहा जाए तो – स्मृति महाभारत, कारिकादि ग्रन्थों में निर्दिष्ट 26 सांख्याचायों के नाम उपलब्ध होते है– 1. कपिल, 2. असुरि, 3. पच्चशिख, 4. विन्ध्यवासी (विन्ध्यवासक), 5. वार्षगण्य, 6. जैगीषव्य, 7. वोढु, 8. असितदेवल (देवल), 9. सनक, 10. सन्नदन, 11. सनातन, 12. सनत्कुमार, 13. भृगु, 14. शुक्र, 15. कश्यप, 16. पराशर, 17. गर्ग (गार्ग्य), 18. गौतम, 19. नारद, 20. आष्टिसेया, 21. अगस्त्य, 22. पुलस्त्य, 23. हारीत, 24. उलूक, 25. वाल्मीकि, 26. शुक।

इसके अतिरिक्त भी अनेक सांख्याचार्य हुए है जिनमें श्री ईश्वरकृष्ण एक प्रसिद्ध सांख्याचार्य है। इन्होंनें सांख्यकारिका नामक एक प्रसिद्ध ग्रन्थ की रचना की है। सांख्यदर्शन में पुरुष और प्रकृति का पारस्परिक भेद, स्वार्थ और परामर्थ का आन्तरिक अन्तर, पुरुष के चैतन्य होते हुए भी निष्कृय और निर्गुण स्वरुप जैसे कान्तिकारी सिद्धान्तों का निरुपण अत्यन्त सूक्ष्म, सुस्पष्ट और सयुक्तिक विवेचन का सर्वाधिक श्रेय ईश्वरकृष्ण को ही मिलता है। इनकी सांख्यकारिका अद्यतन उपलब्ध सांख्यदर्शन के ग्रन्थों में प्राचीनतम ग्रन्थ तो है ही, सांख्यकारिका सांख्यदर्शन की सर्वाधिक उत्कृष्ट रचना भी है। सांख्यकारिका के महत्वपूर्ण पहलु –प्रकृति के परिणाम या क्रमिक विकास अथवा उत्क्रान्ति की धारणा ने इसे सर्वाधिक लोकप्रियता के शिखर पर आरुढ़ कर दिया है। चीनी विद्वान 'कुई–ची' का कथन है कि 'सांख्य–सप्तति' के रचयिता ईश्वरकृष्ण को तत्कालीन प्रशासन के द्वारा सत्तर स्वर्णमुद्रायें भेंट की गई थी। यही कारण है कि यह ग्रन्थ सुवर्णसप्तति, कनकसप्तति अथवा हिरण्यसप्तति के नाम से ख्यात हुआ।

डॉ. विद्याभूषण ने ईश्वरकृष्ण और वसुबन्ध को समकालीन मानकर इनका समय 400 ई. निर्धारित किया है। डॉ. विन्सेण्ट स्मिथ की दृष्टि में वसुबन्धु का समय 280 से 360 ई. के बीच का है, क्योंकि 404 ई. में इनके ग्रन्थों का अनुवाद चीनी भाषा में हो चुका था। इस प्रकार वसुबन्धु का समय जब पीछे हटता है तो ईश्वरकृष्ण का समय करीब 200 वर्ष पीछे ले जाना पड़ता है। इस तरह ईश्वरकृष्ण का समय लगभग 240 ई. के आस–पास पहुँच जाता है।

16.7 सारांश

सांख्यदर्शन निसंदेह भारतीयदर्शन के प्राचीनतम संप्रदायों में परिगणित है। सांख्य योग सिद्धान्तों के संकेत छान्दोग्य, प्रश्न, कठ तथा विशेषतया श्वेताश्वतर उपनिषद् में प्राप्त होते हैं; महाभारत और गीता में भी उपलब्ध होते है; तथा कुछ स्मृतियों और पुराणों में भी मिलते हैं। ब्रह्मसूत्र या वेदान्तसूत्र के रचयिता महर्षि बादरायण और उनके

भाष्यकार शंकराचार्य ने तर्कपाद में सांख्य की युक्तियों के द्वारा खण्डन करने के अतिरिक्त कई स्थानों पर सांख्य के श्रुतिमूलक होने का खण्डन किया है।

परम्परानुसार महर्षि सांख्य के प्रतिष्ठापक आचार्य माने जाते हैं। किन्तु 'सांख्यप्रवचनसूत्र' जिसे कपिल मुनि की रचना माना जाता है। इस सांख्यसूत्र नामक ग्रन्थ पर एक भाष्य लिखा 'विज्ञानभिक्षु' जी ने जिसका नाम है 'सांख्यप्रवचनभाष्य'। सांख्यदर्शन में 25 तत्त्व स्वीकार किए गए हैं सांख्यदर्शनिकों के द्वारा उनमें प्रथम तत्त्व 'मूल–प्रकृति' है और प्रकृति से बुद्धितत्त्व, बुद्धितत्त्व से अहंकार, अहंकार से त्रिगुणों (सत्त्व, रज, तम) की उत्पत्ति होती है। सात्त्विक गुण की अधिकता से एकादश इन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं तथा तमोगुण की अधिकता से पच्चतन्मात्राओं से पच्चमहाभूतों की उत्पत्ति होती हैं।

सांख्यदर्शन के सभी प्रमुख सिद्धान्तों को कारिकाओं के माध्यम से संकलित कर प्रस्तुत किया है। श्री ईश्वरकृष्णकृत सांख्यकारिका में प्रमुख रुप से 70 कारिकाएँ मानी गई है जिन्हें – सुर्वणसप्तति, कर्णगसत्तरी या सांख्यसप्तति भी कहा है। सांख्यदर्शन सत्कार्यवाद को मानता है। कार्यकारण भाव में सांख्याचार्य कार्योत्पत्ति से पूर्व भी कारण में सत् मानते है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि सांख्यदर्शन सभी दर्शनों में प्राचीन और सर्वश्रेष्ठ है इसलिए सांख्यचार्यों को 'सांख्याः वृद्धाः' कहा गया है वृद्धाः अर्थात् श्रेष्ठाः। अतः सांख्यदर्शन सर्वप्राचीन एवं श्रेष्ठ है।

16.8 शब्दावली

1. दुःखत्रयम् = आध्यात्मिक, आधिभौतिकम्, आधिदैविकञ्चेति। तीन प्रकार के दुःख।
2. अत्यन्ततः = नित्यम्। (नित्य)
3. जिज्ञासा = जानने की इच्छा।
4. अव्यक्त = प्रधान (प्रकृति)
5. ज्ञ = पुरुष
6. ज्ञाता = पुरुष
7. ज्ञेय = प्रकृति आदि 24 तत्त्व।
8. अध्यवसाय = बुद्धि।
9. मुक्ति = मोक्ष।
10. व्यक्त = विकार (महदादि)
11. आनुश्रविक = जो सुना जाता है उसे अनुश्रव कहते हैं अर्थात् वेद। उसमें होने वाला अर्थात् वैदिक।
12. आप्त = यथार्थवक्ता।
13. हेतुमत् = हेतु (कारण) वाला है।
14. महततत्त्व = बुद्धितत्त्व।
15. सक्रिय = क्रिया जिसमें हो।

16. त्रिगुण = सत्त्व, रज, तम तीन गुणों वाली (प्रकृति)।
17. अभिमान = अहंकार।
18. करण = तेरह प्रकार के करण–मन, बुद्धि, अहंकार, पञ्चज्ञानेन्द्रियाँ और पञ्चकर्मेन्द्रियाँ करण कहलाती हैं।
19. अन्तःकरण = बुद्धि, मन और अन्तःकरण कहलाते हैं।

16.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. सांख्यसूत्रम्, महर्षि कपिल
2. सांख्यप्रवचनभाष्य, विज्ञानभिक्षु
3. सांख्यकारिका, श्री ईश्वरकृष्ण
4. सांख्यतत्त्वकौमुदी वाचस्पति मिश्र
5. सांख्यकारिका, अनुवादक आचार्य जगन्नाथ शास्त्री, (मोतीलाल, बनारसी दास, दिल्ली)
6. भारतीयदर्शन आलोचन और अनुशीलन, चन्द्रधर शर्मा (मोतीलाल, बनारसी दास, दिल्ली)
7. भारतीयदर्शन, डॉ. शोभा निगम (मोतीलाल, बनारसी दास, दिल्ली)
8. सांख्यतत्त्वकौमुदी, डॉ. आद्या प्रसाद मिश्र (अक्षय वट प्रकाशन इलाहाबाद)
9. सांख्यतत्त्वकौमुदी, डॉ. ओमप्रकाश पाण्डेय (चौखम्भा कृष्णदास अकादमी वाराणसी–221001)
10. सांख्यतत्त्वकौमुदी, डॉ. गजाननशास्त्री मुसलगाँवकर (चौखम्भा संस्कृत संस्थान वाराणसी)

16.10 अभ्यास प्रश्न

1. सांख्यदर्शन के प्रणेता कौन है ?
2. सांख्यप्रवचनभाष्य किसने लिखा ?
3. सांख्यकारिका किसने लिखी ?
4. सांख्यदर्शन में कितने तत्त्व माने गये है ?
5. हिरण्यसप्तति किस ग्रन्थ का नाम है ?
6. सांख्यकारिका पर वाचस्पति ने कौन सा ग्रन्थ लिखा ?
7. सांख्यदर्शन में प्रधान किसे कहा गया है ?
8. 'ज्ञ' किसको कहा गया है ?
9. ज्ञाता कौन है ?
10. प्रकृति यदि जड़ है तो पुरुष क्या है ?
11. चेतन तत्त्व किसे कहा गया है ?
12. मुक्ति कितने प्रकार की होती है ?
13. आस्तिकदर्शन मुख्य रुप से कितने है ?